REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2022

बघेल शासकों का सांस्कृतिक योगदान का ऐतिहासिक अध्ययन

देवेन्द्र कुमार सोनी
शोधार्थी इतिहास
मध्यांचल प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

सारांश –

बघेलखण्ड के सम्बन्ध में सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, कला एवं साहित्य के बारे में जानकारी इस क्षेत्र में पाये गये मन्दिरों, मूर्तियों, शिलालेखों, सामाजिक रीति–रिवाजों, परम्पराओं और उपलब्ध प्राचीन साहित्य से होती है। इस क्षेत्र के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन विभिन्न स्रोतों एवं तथ्यों के आधार पर किया गया है। बघेल राजवंश ने इस भूखण्ड में सर्वाधिक भूमिका निभायी। जनमानस में यह राजवंश इस प्रकार लोकप्रिय हुआ कि भूखण्ड को ही बघेलखण्ड कहा जाने लगा। बघेल राजवंश का उत्कर्ष के विभिन्न मत, प्रमुख बघेल शासक, उनका कालक्रम, प्रमुख घटनाओं तथा उनकी प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने बघेलखण्ड के ऐतिहासिक कालखण्ड को महत्वपूर्ण बना दिया। बघेल राजवंश में बघेलखण्ड राज्य के संस्थापक व्याघ्रराज से लेकर महाराज मार्तण्ड सिंह तक 35 से अधिक शासक हुए जिनका कालक्रम चौदहवीं सदी से लेकर स्वतन्त्रता तक था।

मुख्य शब्द – बघेलखण्ड, सामाजिक, आर्थिक जीवन, कला एवं साहित्य ।

प्रस्तावना –

हिन्दू समाज की सामाजिक संरचना का मुख्य आधार जाति है। प्राचीन काल से ही भारत में अन्य क्षेत्रों की तरह बघेलखण्ड में भी जाति प्रथा प्रचलित रही है। वर्ण व्यवस्था के अर्न्तगत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के लोग रहते हैं। जाति प्रथा के अर्न्तगत प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति जन्म से ही निश्चित हो जाती है। बघेलखण्ड में जाति व्यवस्था में ऊँच–नीच की भावना व्याप्त रही है। ब्राह्मण और क्षत्रिय राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से समाज में प्रभावशाली रहे हैं। इस तरह यह कहा जा सकता है कि गहोरा कालीन बघेलखण्ड के समाज में परम्परागत चार वर्णों और अनेकानेक जातियों का प्रार्दुभाव हो गया था। वीरभानुदय काव्य में आश्रम व्यवस्था का कोई वर्णन नहीं मिलता है। कर्नल बार ने लिखा है कि, रीवा के जनसमुदाय में ब्राह्मण सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान पर थे। संभवतः भारत में ऐसी कोई देशी रियासत न होगी, जिसमें रीवा की तरह ब्राह्मण इतने उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किये गये हों। समाज में ब्राह्मण सर्वाधिक स्वतंत्र, सम्मानित और प्रभावशाली हैं। बघेल दण्ड विधान में उन्हें विशेष सुविधायें प्राप्त थीं। उन्हें राज्य की भूमि के विशाल क्षेत्र पर राजस्व मुक्त अनुदान प्राप्त थे। शासन के अनेक उच्च पदों पर भी थे। क्षत्रियों की स्थिति दूसरे स्तर पर थी, जिनमें बघेल इलाकेदार, पवाईदार विशेष सम्मानित थे। राज्य के अन्तर्गत इलाकों और पवाईयों की फेहरिस्त को देखने से यह विदित होता है कि इन राजपूत पवाईदारों का समुदाय कितना शक्तिशाली और विशाल था। वैश्य समाज धनाढ़य था, विविध व्यवसाय करता था, पर समाज में तीसरे दर्जे पर था। समाज का चौथा वर्ण शूद्र एवं

शूद्र वर्गीय जातियों में बँटा था। इस वर्ण की निम्न जातियाँ अन्त्यज भी थीं। इसी वर्ग में अनेक जनजातियाँ भी थी जैसे कोल, गोंड, बैगा, भारिया, माझी, पनिका, बैसवार, भुर्तिआ, अगारिया, बसोर, बेमरिहा, खैरवार तथा पतहारी आदि भी थे। समाज की सरंचना वर्ण, धर्म एवं व्यवसाय पर आधारित थी। समाज में सम्मानित ब्राह्मण, हर दृष्टि से सम्पन्न था। उसे जहाँ विशेषाधिकार प्राप्त थे, वहीं राजकीय पद व पवाईयाँ भी प्राप्त थीं। वह अपने आप को समाज का व्यवस्थाकार एवं आधार मानता था। जहाँ गिने चुने क्षत्रिय इलाकेदार थे, उनकी पवाइयाँ थी, वहीं अधिक सैन्य एवं प्रशासनिक सेवा के बाद कृषि कर्म पर निर्भर थे। समाज के वाणिज्य एवं व्यवसाय मे वैश्य आगे था। शूद्र सेवा के साथ विविध व्यवसाय एवं कृषि पर जीवित था। इस काल के समाज में कर्म एवं व्यवसाय पर जातियों का विस्तार हो गया था और सारे समाज की सरंचना जाति के ताने–बाने से की गई थी। इस समाज संरचना में मुस्लिम जातियों का भी उल्लेखनीय स्थान था।[1]

इस क्षेत्र की भू–व्यवस्था पर ब्रिटिशकालीन प्रशासन का प्रभाव सन् 1812 की सन्धि के बाद प्रारंभ होना पाया जाता है। राज्य में पहला बन्दोबस्त सन् 1881–95 के बीच, दूसरा बन्दोबस्त सन् 1903–1918 के बीच तथा तीसरा बन्दोबस्त सन् 1920–28 के बीच कराया गया। इस बन्दोबस्त व्यवस्था ने राज्य के राजस्व को बढ़ाया। रीवा राज्य की भूमि दो हिस्सों में बटी थी। जमीन का एक हिस्सा रीवा दरबार के कब्जे में था, जिसका प्रबंध रैयतवारी प्रणाली के आधार पर था। इस प्रकार की जमीन को कोठार कहते थे। जमीन का दूसरा हिस्सा ''पवाई'' का था, जो इलाकेदारों और पवाईदारों के अधीन था। 1946–47 में पवाईदारों और इलाकेदारों की संख्या 1348 थी।[2]

बघेलखण्ड का समाज धर्म प्रधान होते हुये विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य की भावना से युक्त रहा है। इस बात की पुष्टि कोनी, रतनपुर, मल्लार, खरोद तथा अजयगढ़ से प्राप्त शिलालेखों से होती है। इस शिलालेखों में उल्लेख है कि, संसार में मानवीय जीवन क्षणभंगुर है और यही भावना व्यक्ति को भक्ति मार्ग की ओर प्रेरित करती है। यहाँ शैव और वैष्णव मत प्रमुख रहे हैं। बघेलखण्ड विश्व भू–मण्डल का वह अद्‌भुत क्षेत्र है, जिसे आदिकाल से अवतारी पुरूषों, देवी–देवताओं, सन्त–महात्माओं का सानिध्य प्राप्त हुआ है। विन्ध्यांचल के कैलाश तक तथा मगध से गांधार तक का विस्तृत भू–भाग प्रारंभिक आर्यावर्त है। संसार की अनेक सभ्यताओं का उदय एवं विकास इस धरती पर हुआ है। विन्ध्य पर्वत श्रृंखला भारतीय उप–महाद्वीप को उत्तर से दक्षिण तक जोड़ती है। इसी पर्वत श्रृंखला को पार कर उत्तर की संस्कृति लंका तक और दक्षिण की संस्कृति ईरान तक पहुँची है। यही कारण है कि यह भू–भाग सामंजस्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ आर्य, द्रविड़ शैव, शाक्त वैष्णव, बौद्ध, जैन, पारसी, इसाई, मुस्लिम धर्म एवं मत समय–समय पर फले–फूले हैं। इस अंचल में यह विश्वास है कि भगवान राम अयोध्या से चित्रकूट होते हुये, इसी क्षेत्र से होकर नासिक और लंका की यात्रा की थी। इसके स्मृति चिन्ह आज भी शैल चित्रों, मन्दिरों, गुफाओं, ऋषि आश्रमों और मठों में यत्र–तत्र पाये जाते है। संत महर्षि बाल्मीकि, संत कबीर, संत रविदास, संत धर्मदास, संत प्राणनाथ एवं संत तुलसीदास का भी सानिध्य इस क्षेत्र को प्राप्त हुआ है। महर्षि बाल्मीकि ने इसी क्षेत्र में तमसा नदी के तट पर आदि काव्य रामायण की रचना की थी। ऋषि अगस्त और ऋषि गौतम की भी यह क्षेत्र तपस्थली रहा है।[3] रीवा नरेश महाराज वीर भानू सिंह बाघेल ने संत कबीर से दीक्षा ली थी। उनके पुत्र महाराज रामचन्द्र ने बांधवगढ़ में सन्त कबीर का मठ और अमरकण्टक में कबीर चौरा का निर्माण कराया था, जो आज भी प्रसिद्ध है। रीवा राज्य के महाराजाओं का गुरू स्थल 'लक्ष्मण बाग' है, जहाँ संतों के आवास की व्यवस्था की गई है।

विश्लेषण –

समाज में स्त्रियों की स्थिति संतोषप्रद कही जा सकती थी, पर अच्छी नहीं। सामान्यतया स्त्रियाँ पुरूषों पर निर्भर होती थीं। पत्नी अपने पति की आज्ञाकारिणी होती थी। वह पति परमेश्वर के सिद्धान्त को मानती थी। पुरूष से स्त्री का स्थान निम्न था। धनी एवं प्रभावशाली परिवारों में बहु–विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पर्दा प्रथा प्रचलित थी। सती प्रथा भी अस्तित्व में थी। सवर्णों में विधावा विवाह का प्रचलन न था। आभूषण प्रेम नारी और पुरूष दोनों में था। यहाँ सम्पन्न वर्ग के लोगों में हीरा–जवाहर, पन्ना, मूँगा, नीलम, मोती युक्त सोना एवं चांदी के जेवर प्रचलित रहे हैं। मध्यम वर्ण भी इन्ही का अनुशरण करता है। सामान्य परिवारों में गिलट के आभूषण भी प्रचलित रहे हैं। रीवा में प्राचीन काल से लाख के गहने बनाये जाते रहे हैं। लाख की कण्ठी कठुला, तर्की,

कंगन चूड़ी आदि यहां प्रसिद्ध रहे हैं। आभूषण, रीवा की प्राचीन संस्कृति के परिचालक हैं। समकालीन समाज में कला और साहित्य का विकास आवश्यकता के अनुरूप अपनी गति पर था।[4]

समाज के विभिन्न वर्गों एवं जातियों का रहन–सहन उनकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता था। इस क्षेत्र की जंगली जातियाँ बड़ी विपन्न थी। समाज के सम्पन्न लोग धोती–कुर्ता पहनते थे और मस्तक पर पगड़ी बाँधते थे। समाज में अपनी वृत्ति के अनुरूप लोग सोने–चाँदी के आभूषण धारण करते थे। इस क्षेत्र के सामान्यजन अपना मकान कच्ची मिट्टी का बनाते थे। यहाँ के वनांचल में बसने वाली जंगली जातियां मात्र झोपड़ों में रहती थीं। उनके झोपड़े वृक्ष की डालियों ओर घास–चारे के बने होते थे। यहाँ खेर उसालने की भी रीति थी अर्थात् कुछ दिनों तक एक स्थान पर बस्ती रहने के बाद जमींदार किसानों को दूसरे स्थान पर बसाते हैं और पहली बस्ती या 'खेर' में खेती कराते थे। बड़े गाँव, कस्बे व नगरों में लोग बहुधा स्थायी मकान पत्थरों व ईटों के बनाते थे। इलाकेदार अपनी गढ़ी पत्थर व ईट से बनवाते थे। इन्हें जोड़ने के लिये चूना व सुर्की का प्रयोग किया जाता था।

कोठार की जमीन पर लगान में कमी या अधिक दरबार द्वारा की जाती थी, जबकि इलाकों और पवाइयों की जमीनों पर लगान वृद्धि या कमी इलाकेदारों और पवाईदारों की इच्छा पर निर्भर थी। अच्छी जमीनों (अधिक उपजाऊ) के लिये किसानों में परस्पर प्रतिस्पर्धा रहती थी, जिसका लाभ इलाकेदारों और पवाईदारों को प्राप्त होता था। इलाके और पवाई की जनता को भूमिकर के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के कर देने पड़ते थे जो कि इलाकेदारों और पवाईदारों द्वारा निर्धारित किये जाते थे। रीवा राज्य में अनेक प्रकार की पवाईयाँ थीं। जिसका विवरण निम्न स्वरूपों में है[5] :–

1. **मामला** – राज दरबार द्वारा कुटुम्बियों को प्रदान की जाती थी। इस पर सानाना रकम (मामला) दरबार में दाखिल की जाती थी। सालाना मामला निश्चित कर दिया जाता था।
2. **पै–पखार** – महाराजा के पैर पखारने के उपलक्ष्य में यह भूमि दी जाती थी। इस पर आमदनी का चौथा हिस्सा लगान के रूप में दिया जाता था।
3. **जागीर** – यह भूमि जातीय सेवा के बदले प्रदान की जाती थी, जो पवाईदार की स्थायी सम्पति के समान होती थी।
4. **वृत्त** – राज दरबार द्वारा यह भूमि, जीविका के लिये प्रसन्नतापूर्वक लोगों को प्रदान की जाती थी।
5. **मुड़वार** – यह भूमि राज दरबार द्वारा युद्धों में प्राण–न्यौछावर करने वालों के परिवारजन को भरण–पोषण के लिये दी जाती थी।
6. **नानकार** – किसी की सम्पूर्ण सम्पति दरबार में आ जाने पर उसके गुजारे के लिये नानकार पवाई उसे दी जाती थी।
7. **भायप** – यह भूमि मैत्री के बदले पवाईदार को प्रदान की जाती थी और मैत्री के समाप्त होने पर भूमि जब्त भी कर ली जाती थी।
8. **देवार्थ** – मन्दिरों के देखरेख में, व्यय होने वाले खर्च के लिये यह भूमि दी जाती थी।
9. **कठवृत्त** – यह पवाई भूमि किसी मानतेगीर को उसके जीवनपर्यन्त निर्वाह के लिये दी जाती थी। इसके बदले में शर्त के अनुसार रकम दरबार को देना पड़ता था।
10. **जनाना जागीर** – यह रानी महारानी की पवाईयाँ या बड़ी पवाईयों के जब्त हो जाने पर, महिलाओं को गुजारे के लिये जागीर रूप में दी जाती थी।

बघेलखण्ड में प्राचीनकाल से ही आजीविका का साधन कृषि रही है। इसलिये रियासती काल में यहाँ किसी भी बड़े उद्योग की स्थापना नहीं हो पायी। युद्ध सामग्री में प्रयुक्त होने वाला 'तीर का फर' सोहागपुर तथा 'फरसा' सिगरौली में बनाया जाता था। यहाँ लोहे के अन्य परम्परागत सामान तथा बर्तन सामग्री आदि भी बनाये जाते थे। इनमें सरौता, चाकू, कुदाल, कुल्हाड़ी आदि प्रमुख थे। प्राचीन काल में यहाँ गजी (कपड़ा) निर्माण का काम होता था। रीवा की गजी उत्तर भारत में प्रसिद्ध थी, जिसे रीवा के जुलाहे बनाते थे। जिस समय देश में खादी का प्रचार–प्रसार हो रहा था, उस समय रीवा 'गजी' के लिये प्रसिद्ध था। रीवा के तत्कालीन नरेश महाराज गुलाब सिंह भी गजी के कपड़े पहनते थे। रीवा लाख के लिए उत्पादन एवं उससे बनने वाले पदार्थों के लिए प्रसिद्ध था। कलकत्ता आदि बड़े नगरों के व्यापारी यहाँ से 'लाख' का क्रय करते थे। महाराज गुलाब सिंह

के शासन काल में लाख के संग्रहण एवं बिक्री की व्यवस्था सुचारू ढंग से की गई थी। लाख के गहने इस अंचल में बहुत लोकप्रिय थे। यह गहने बहुत ही सस्ते एवं सुन्दर होते थे। सन् 1920–25 के आसपास इस क्षेत्र में लाख का उत्पादन सर्वोत्कृष्ट स्थान पर था। राज्य का अधिकांश राजस्व इससे एकत्रित होता था। यहाँ धातु से बर्तन एवं अन्य पदार्थों के बनाने का कार्य भी परम्परागत रूप से होता आया है। धातु से बर्तन निर्माताओं को औधिया कहा जाता था। यह लोग धातु के आभूषण भी बनाते थे। बघेलखण्ड में सतना जिले के उचेहरा एवं रीवा नगर के कटरा मोहल्ले में धातु के बर्तन बनाने का काम प्राचीन काल से हो रहा है। उचेहरा धातु से बर्तन बनाने के उद्योग में भारत में प्रसिद्ध है। सोने चाँदी के गहने बनाने में यहाँ के सोनार काफी निपुण थे। लकड़ी से बनाई जाने वाली कुछ वस्तुयें भी अपनी श्रेष्ठता के लिये विख्यात थी, इनमें नारियल के शल्क से बने हुक्के रीवा की विशिष्ट पहचान थी। दुधिया सागौन और आबनूस से कुन्देर खरादिये तथा बढ़ई जाति के लोग हुक्कों के लकड़ी के ढाँचे, रूलर, छड़ियाँ, लकड़ी के खिलौने तथा बर्तन भी बनाते थे। रीवा के बढ़ई लोगों द्वारा कृषि उपकरण, देशी बैलगाड़ियाँ तथा फर्नीचर बनाया जाता है। महाराज गुलाब सिंह के शासन काल से कुन्देर जाति के लोग सुपाड़ी के खिलौने आदि बनाने लगे हैं, जो आज विश्व प्रसिद्ध होकर रीवा में अपनी उपस्थिति दर्ज कर रीवा का नाम रोशन कर रहे हैं।[6]

जगन्नाथ शतक के लेखक विद्वान बघेल नरेश महाराज रघुराज सिंह हैं। भारतीय इतिहास में ऐसे नरेशों की संख्या उँगलियों में गिनने लायक है जो राजा होने के साथ–साथ मौलिक रचनाए की हों। इन्होने अपनी विलक्षण काव्यप्रतिभा से बघेली हिन्दी साहित्य तथा संस्कृत साहित्य के भण्डार को समृद्ध बनाया है। संस्कृत तथा हिन्दी में अपनी रचनाएं बघेलखण्ड की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में रही हैं। संस्कृत में आप महाकवि जयदेव के तथा हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास के समकक्ष ठहरते हैं। आपकी भाषा में लालित्य तथा विषय में गाम्भीर्य एक साथ दिखाई देता है। ग्रन्थ रचना का काल–रीवा राज्य के तत्कालीन सेनापति लाल बल्देव सिंह ने लिखा है कि जगन्नाथपुरी की यात्रा प्रारम्भ करने के दिन से ही उन्होंने संस्कृत ललित छन्दों में जगन्नाथ जी की स्तुति आरम्भ किये। वहाँ पहुंचते–पहुंचते 'जगदीश–शतकम्' नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ। पुरी पहुंच जाने पर श्रीमान् ने भाषा प्रेमियों के चित्त विनोदार्थ पुनः श्री जगन्नाथ जी की वन्दना ललित भाषा में छन्दों में किया और इसका नाम 'जगन्नाथशतक' रखा। जगन्नाथशतक के अन्त में रचना का संवत् 1914 दिया है। स्पष्ट है कि महाराज ने 'जगदीशशतकम्' इस संस्कृत रचना के पश्चात पुरी प्रवास काल में सन् 1857 में इस ग्रन्थ को पूर्ण किया था।[7]

लोक साहित्य एवं संस्कृति :–

लोक साहित्य लोक जीवन का प्रतिबिम्ब होता है, जो गीत, कहानियों और पहेलियों के रूप में प्रत्येक समाज में विद्यमान रहता है। बघेली भाषा में जन्म, मुण्डन, जनेऊ और विवाह के समय यहाँ जो गीत गाये जाते हैं, वे वास्तव में शताब्दियों से पीढ़ी दर पीढ़ी को हस्तान्तरित होने वाला लोक साहित्य है। इसी तरह देवीपूजा के गीत, कजली, झूला और खजुलइयाँ के गीत, डेढ़िया गीत, तुलसी के विवाह गीत, फाग और होली, बनरा, सोहाग, कलेवा, विदाई, सोहर, बधाव आदि त्यौहारों के गीत प्रचुर मात्रा में यहाँ प्रचलित हैं। राम–सीता के जीवन की कथायें आल्हा–ऊदल की कहानी तथा बघेल राजपूतों के युद्ध या वीरता की कहानियाँ भी प्रचलित है। इस क्षेत्र में बघेली पहेलियाँ भी प्रचलित है जो अत्यन्त साधारण शब्दों में गूढ़ अर्थ प्रस्तुत करती है। बघेली भाषा इलाहाबाद तथा मिर्जापुर के दक्षिणी भाग में प्रचलित है, जिसका केन्द्र स्थान रीवा है। बघेली भाषा का साहित्य पद्य एवं गद्य दोनों ही रूप में पाया जाता है। इसका लोक साहित्य सम्पन्न है। बघेली रामायन, परशुराम वार्ता, बघेली किशन कथा, बघेली भजन, बघेली गारी, बैजू की सूक्तियाँ, सैफू करे बात, काका कै बात आदि प्रसिद्ध बघेली रचनायें है। इस क्षेत्र में बैजू, सैफू, शंभू काकू आदि बघेली कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।[8]

जनजातीय लोक परम्पराः–

जनजातीय शब्द अपने में असीम, अनुपम और अद्भुत इतिहास सँजोये हुये है, इसका उच्चारण करते ही पुरातन जातियों की झलक सामने आ जाती है। आधुनिक युग की चकाचौंध से दूर, आधुनिकता की कृत्रिम और जटिल व्यवहार शैली से असंयुक्त और आज के भौतिक वैभव एवं भोगवादी जीवन से अपरिचित, एकान्त और शान्त प्रकृति की गोद मे रहने वाली जनजातियों के लोग आज भी अपनी परम्पराओं से युक्त अपनी मर्यादा और संस्कारों से पुष्ट सामाजिकता का परिचय देते हैं। इनकी अपनी विशिष्टतायें हैं, इनके अपने संस्कार हैं तथा

इनकी अपनी जीवनशैली है। गोंड़, बैगा, कोल, पनिका और अगरिया रेवांचल में वास करने वाली प्रमुख जनजातियाँ हैं। इन जनजातियों की धार्मिक परम्परायें, सामाजिक रीति–रिवाज शताब्दियों से चली आ रही हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, जो अब शहरीकरण की आड़ में विकृत सी होती जा रही है। इस जनजातीय समाज में नृत्य, संगीत, गायन और वादन का विशेष महत्व हैं। इससे इनका मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही वे अपने देवता को प्रसन्न करने के लिये ऐसे आयोजन करते हैं। इनके वाद्य यन्त्र अनूठे होते हैं। नगाड़े, ढोल, ठंकी इनके प्रमुख वाद्य यन्त्र हैं। बाँसुरी, पायल और घुँघरू का भी कहीं–कहीं प्रचलन है। बैगा, गोंड़ और कोल जनजाति में प्रचलित शैला, कर्मा, बिरहा, अहीर नृत्य तथा कोलदहा प्रसिद्ध लोक नृत्य है। यह नृत्य रात में होते हैं। यह लोग स्वयं की बनायी हुई कच्चे महुए की शराब पीकर तथा आग जलाकर बाड़ों में रात भर नृत्य करते हैं। बैगा जनजाति में प्रचलित पगधौनी एक विशेष प्रकार की नृत्य शैली है। यहाँ के गोंड़ो की दिनचर्या जंगल से लकड़ी बांस काटना, मछली पकड़ना, शिकार करना, चिरौंजी, महुआ, हर्रा, बहेरा, करौंदा, गूलर, जामुन आदि फलों को एवं तेंदू पत्तों को इकठ्ठा करना है। यह लोग बांस की टोकरी और डलिया आदि भी बनाते हैं। इनकी बस्ती में मकानों की संख्या कम होती है। वनोपज पर निर्भर रहने के साथ यह लोग कृषि कार्य भी करते हैं। आखेट के समय गोंड़ स्त्रियाँ भी बाहर जाती हैं। शिकार के समय यह लोग शहद तथा गोंद का भी संग्रह करते हैं। इनमें कुछ लोग पशु–पालन भी करते हैं। महुआ, खजूर, इमली एवं ताड़ के फलों का प्रयोग खाने के साथ–साथ शराब आदि के लिये किया जाता है। इनके यहाँ देवताओं को प्रसन्न करने के लिये पशु बलि की भी प्रथा है। गोंड़ जनजाति के लोगों के बड़ा देव तथा घमासान इनके प्रमुख लोक देवता हैं। आभूषण के नाम पर मूँगा तथा नकली मोतियों के आभूषण का प्रचलन है। गोंड़ जनजाति में बहु–विवाह तथा विधवा की प्रथा है। बैगा स्त्रियाँ छल्ले, हँसुली तथा हाथी दांत की चूड़ियाँ पहनती हैं। इनके मकान घास–फूस के होते हैं और दीवाल को मिट्टी से लीपा जाता है। भूत–प्रेत में इनका विश्वास है। शीतला, अंबिका, वैराई, लोहापुर माता, बड़ा देव, ठाकुर देव, पनिहारी आदि इनके देवी–देवता हैं। अगरिया जनजाति के लोग आग में लोटा गलाने का काम करते हैं। रीवा जिले में करियाझार नामक स्थान में लगभग पूरी आबादी जनजातियों की है। यह स्थान एक द्वीप के समान है।[9]

बघेली लोक गीत :–

बघेलखण्ड की प्राचीन कला और संस्कृति की झलक हमें यहाँ के लोकगीतों में परिलक्षित होती है। इस क्षेत्र में लगभग 88 प्रकार के लोकगीत विभिन्न संस्कारों के समय गाये जाते हैं। इन लोकगीतों में अनेक रागों के स्वरों का समावेश पाया जाता है। राग जौनपरी, पीलू, जै–जै वंती, भोपाली, यमन, भैरवी, काफी, रागेश्री, विलागल देश, आशावरी, खमाज, भीमपलासी, तिलककामोद एवं कोमल ऋषभ आशावरी जैसे रागों का स्वर बघेलखण्डी लोक संगीतों में पाये जाते हैं। याद्वेन्द्र प्रसाद शुक्ल ने लिखा है, कि बघेलखण्ड में जनेऊ संस्कार का गीत जिसे हम बरूआ कहते हैं, इसके गायन में विलंबित एक ताल बजता है तथा राग भोपाली के स्वर लगते हैं। इसी प्रकार ब्याह संस्कार के गायन में ताल, वृताल विलंबित बजता है तथा राग रागेश्री के स्वर लगते हैं। बघेलखण्डी लोकगीतों में बजने वाले ताल क्रमशः दादरा, कहरवा, रूपक, दीपचंदी, एकताल विलंबित, तृमताल विलंबित बजते हैं। षोडस संस्कार के अलावा भी ऋतुओं के लोकगीत गाये जाते हैं। कुछ सामयिक लोकगीत भी गाये जाते हैं, जैसे–जेउनार गारी, पूड़ी, (सोहारी) बेलने की गारी, लगभग 10 प्रकार से गायी जाती है। देवी पूजने के लिये जिस गैलिहाई कहते हैं, कई प्रकार से गाये जाते है। बसंत ऋतु में फगुआ लगभग 15 प्रकार से गाये जाते हैं। इसी तरह आदिवासी लोकगीत लगभग 20 प्रकार के गाये जाते हैं।[10] चैती दो प्रकार की गायी जाती है। वर्षा ऋतु के लगभग 16 प्रकार के लोकगीत गाये जाते हैं। विरहा, लोरी, कथागीत जिसे हम सरमन गीत कहते हैं, ददरिया, भेला प्रकार के दो प्रकार के महिला एवं पुरूष स्वरों में अलग–अलग गाये जाते हैं।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः बघेल राजाओं ने बघेलखण्ड के विकास में योगदान दिया और बघेलखण्ड को सांस्कृतिक विरासतों से समृद्ध किया। रघुराज सिंह ने लक्ष्मण जी का मंदिर, गोविन्दगढ़, विश्वनाथ सागर बनवाए। वेंकटरमण सिंह ने रीवा में गोला घर, राजनिवास, कचहरी तथा पीली कोठी आदि का निर्माण करवाया। अनेक

बघेल राजाओं ने साहित्य, संगीत और सामाजिक जीवन के उत्थान में भी योगदान दिया। महाराज भाव सिंह स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने विभिन्न विद्वानों को राज्याश्रय दिया और 'बघेलवंशवर्णनम्' तथा 'हौत्रकल्पद्रुम' आदि ग्रन्थों की रचना हुई। महाराज रघुराज सिंह संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी भाषा के विद्वान थे, उन्होंने 'जगदीश शतक' नामक ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने खेलों में विशेष रूचि ली और 'दशघरा शतरंज' की रचना की। महाराजा गुलाब सिंह ने गांधी जी के प्रभाव में ताउम्र खादी पहनी।

संदर्भ –

[1] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 84
[2] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 86
[3] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 88, 89
[4] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 85
[5] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 87
[6] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 87, 88
[7] पत्रिका सहस्त्राब्दी के आर–पार, कादम्बिनी क्लब, सतना, वर्ष 2005, पृष्ठ 109
[8] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 66
[9] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 66
[10] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 67